Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 16, Issue No. 6, May-2019, ISSN 2230-7540

हिन्दुस्तानी संगीत में अवनद् वाद्य का महत्व विशेष संदर्भ -तबला

Dr. Prakash Kumar Mishra*

+2 Music Teacher, Higher Secondary School, Binda, Muzaffarpur

सार – ***संगीत मानवीय सुखों की भावना को व्यक्त करने का एक माध्यम है। संगीत विद्वानों के अनुसार, संगीत स्वरा (नोट्स), पाडा (पाठ) और लाया (ताल) का संयोजन है। वाद्य संगीत में, प्राथमिक तत्वों के रूप में स्वरा और लया हैं, लेकिन स्टाक्स या बोल्स के साथ पडा की भूमिका को प्रतिस्थापित किया गया है। संगीत वाद्ययंत्रों का भारतीय संगीत में महत्वपूर्ण स्थान है। भारत में वाद्ययंत्र बजाने की कला पारंपरिक रूप से पीढ़ी से पीढ़ी तक, आधुनिक युग से इस आधुनिक युग तक चली आ रही है। जैसा कि संगीत एक प्रदर्शन कला है, जो रचनात्मक है, स्वयं, और स्थिर नहीं हो सकती है, इसलिए धीरे-धीरे विकास और प्रयोगों ने आधुनिक पीढ़ी को हमेशा नए विचार दिए हैं सभी प्रकार और श्रेणियों के संगीत वाद्ययंत्रों का आविष्कार अलग-अलग समय के प्रतिनिधियों द्वारा किया गया था और स्थान, लेकिन तकनीकी उद्देश्यों के लिए इन उपकरणों का एक व्यवस्थित-वर्गीकरण प्राचीन समय से आवश्यक माना गया था। उन दिनों प्रचलित वर्गीकरण भारत में कम से कम दो हजारों साल पहले तैयार किया गया था। पहला संदर्भ भरत के नाट्यशास्त्र में है। उन्होंने उन्हें Vad घाना वाड्या अवनद्ध वाद्य तं सुश्र्या वाद्या 'और' टाटा वाद्या' 1 के रूप में वर्गीकृत किया।***

कुंजी शब्द: अवनद्ध वाद्य, वाद्ययंत्र, भारतीय संगीत

----------X----------

परिचय

भारतीय संगीत की वाद्य वर्गीकरण परम्परा

हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में तबला वाद्य का अप्रतिम स्थान रहा है। संगीत में गायन, वादन एवं नृत्य तीनों का समावेश किया गया। गायन में स्वर लय के साथ काव्य का समावेश भी किया गया है, किन्तु वादन में स्वर तथा लय ही प्रयोग में लाए जातें है। अतः लय, ताल का आगमन वाद्यों से ही हुआ, इसलिए संगीत की वास्तविक कला वाद्य से ही विकसित हुई। महर्षि भरत ने नाट्य में वाद्यों को महत्त्वपूर्ण माना है। नाटक को सजीव बनाने के लिए वाद्य अत्यन्त आवष्यक होते है। वाद्य संगीत का सहयोग नाटक को न मिले तो वह नीरस सा प्रतीत होता है। महर्षि भरत के मतानुसार किसी भी वाद्य का नाटक के रस भाव को देखकर ही उनका प्रयोग किया जाना चाहिए।

भारतीय इतिहास पर अगर दृष्टि डाले तो हमें यह ज्ञात होता है कि अवनद्ध वाद्य का जन्म भगवान शिव द्वारा हुआ ऐसा प्रतीत होता है सबसे प्राचीन अवनद्ध वाद्य डमरू का उल्लेख शास्त्रों में मिलता है। "पाणिनि की अष्टाध्यायी के अनुसार शिव के द्वारा डमरू वादन से ही देवभाषा संस्कृत के समस्त वर्णों की उत्पत्ति हुई है। पौराणिक मान्यताओं के अनुसार मृदंग नामक प्राचीन अवनद्ध वाद्य के आविष्कारक भी शिव हीहैं।

"योगमाया शुक्ला के अनुसार - "अवनद्ध और आनद्ध इन दोनों शब्दों की व्युत्पत्ति के मूल में नद्ध शब्द है जो कि संस्कृत भाषा के नह् धातु से क्त प्रत्यय लगकर बना है। नह् का अर्थ बांधना लपेटना, ढंकना, पहनना या धारण करना है। अतः नद्ध शब्द का अर्थ चारों ओ से बँधा ढँका, मढा लपेटा या पहनाया हुआ होता है। इसी नद्ध शब्द के पहले विस्तार या फैलाव के अर्थ वाले 'अव' उपसर्ग के योग से अवनद्ध और समीप, सामने तथा चारो ओर से, इत्यादि अर्थों वाले 'आ' उपसर्ग के योग से 'अवनद्ध' शब्द की व्युत्पत्ति हुई है। आनद्ध और आनद्ध दोनों का सामान्य अर्थ 'बँधा और ढँका हुआ होने से भारतीय संगीत में ये दोनों शब्द चर्म से बंधे, ढके व मढे वाले वाद्यों के विशेष अर्थ में रूढ हो गए।"[1]

www.ignited.in

डॉ. विश्वनाथ शुक्ल के अनुसार - 'अवनद्ध का अर्थ है। चारो ओर से बंधा हुआ। 'आनह्यते मुखे चर्मणाबध्यते। 'णव बंधने' बाँधने के अर्थ में णह धातु है, इसमें 'आ' उपसर्ग एवं त्तः प्रत्यय है। नहो धः सूत्र से आनद्ध शब्द सिद्ध होता है। चमडे से गढे मुख वाले पटह (नगाड़ा) मृदंग, डमरू आदि वाद्य अवनद्ध वाद्य है।इस प्रकार जिस वाद्य के मुख पर चमड़ा मढा होता है तथा जिसे हाथ या किसी अन्य वस्तु द्वारा आघात कर ध्वनि उत्पन्न किया जाता है वह सभी वाद्य अवनद्ध वाद्य के अन्तर्गत आते हैं।[2] बात अगर अवनद्ध वाद्य के विकास की करें तो प्रारम्भ में मानव आदिम अवस्था में था। जानवरो को मारकर खाता था जानवरो की खाल का उपयोग अपने शरीर को ढ़कने गर्म रखने के लिए करता था "उस चर्म को धारण योग्य बनाने के लिए लकड़ी या किसी कड़ी चीज से पीटता होगा। जिसके फलस्वरूप गम्भीर नाद उत्पन्न हुआ होगा, जिससे प्रेरणा प्राप्त करके अपनी कल्पनानुसार अवनद्ध वाद्य का निर्माण किया। प्रारम्भिक अवनद्ध वाद्य अपने सरलतम रूप में प्रचलित थें। जैसे- भूमि दुन्दुभि जिसे भूमि के अन्दर बहुत बड़ा गड्ढा खोदकर किसी जानकार के चमड़े से आच्छादित करके बैल की पूँछ से प्रहार कर बजाया जाता था।[3]

अवनद्ध वाद्य

अवनद्ध वाद्यों को लय ताल के रूप में प्रयोग किया जाता है। इस वर्ग के अन्तर्गत चमढ़े से मढ़े वाद्य आते है। 'अवनद्ध' तथा 'आनद्ध' शब्द संस्कृत भाषा के 'नद्ध' धातु में 'कत्त' प्रत्यय तथा उससे पूर्व क्रमशः 'अव' तथा 'आ' उपसर्ग लगाकर बने। नद्ध का अर्थ बाँधना या ढंकना होता है।"[1]

इस प्रकार अवनद्ध वाद्य का जन्म मानव की आव'यकता के फलस्वरूप हुआ। इसी सम्बन्ध में पी0 साम्बमूर्ति ने अवनद्ध वाद्यों के उद्गम के विषय में बताया है कि खोखली शाखाओं से उत्पन्न ध्वनि को मानव ने अनुभव किया। मजबूत चोंच तथा पंजे वाले पक्षी जब वृक्ष के खोखले तनों पर बैठते थे और अपनी चोंच से उन पर रगड़ उत्पन्न करते थे तो उनसे एक विशिष्ट प्रकार की ध्वनि उत्पन्न होती थी। इस प्रकार खोखला तना, जिसमें कि वायु रहती है वह ध्वनि को एक गूँज प्रदान करता हैं। इस तथ्य को जानकर मानव को ड्रम बनाने की प्रेरणा प्राप्त हुई।[1] अवनद्ध वाद्य, तत वाद्य, सुशिर वाद्य से प्राचीन माना गया है इसका विकास पहले हुआ ऐसा प्रतीत होता है। प्रारम्भ में मानव गड्ढा खोदकर पशु के चर्म से आच्छादित करके वादन किया जाता था। आचार्य भरत ने अवनद्ध वाद्य के लिए भांड शब्द का भी प्रयोग किया है। अवनद्ध वाद्यों का वर्गीकरण 'अण्डज' देह योनियों के तुल्य ही प्रतीत होता है ये वाद्य अण्डज की भाँति प्राणियों की त्वचा और प्राकृतिक उपकरणों मृत्तिका लकड़ी धातु से मिलकर बनते हैं।[2] अवनद्ध वाद्य को विभिन्न उपवर्गो में वादन क्रिया के आधार पर एवं बनावट के आधार पर विभक्त किया जा सकता है।

भारत में संगीत साहित्य में

मेम्ब्रेनोफोन्स को अवनाध वाद्य कहा जाता है। अवनाधा का अर्थ है, "ढंका जाना", इसलिए एक ऐसा उपकरण जिसमें एक बर्तन या एक फ्रेम चमड़े से ढंका होता है, एक अवदान वाडिया होता है। जबकि यह ड्रम के लिए सामान्य शब्द है, पारंपरिक रूप से एक और है, पुष्कर, जो लगता है कि सामान्य रूप से ड्रम भी है।

अवनद्ध या आनद्ध दोनों का सामान्य अर्थ बँधा और ढका हुआ होने से भारतीय संगीत में ये दोनों शब्द चर्म से बंधे, ढके व मढ़े हुए मुँह वाले वाद्यों के विशेष अर्थ में रूढ़ हो गए।"[3] खाल से मढ़े वाद्य जो दोनों हाथों के से बजाए जाते है अवनद्ध वाद्य कहलाते है। यह वाद्य लय को प्रस्तुत के लिए प्रयुक्त होते है इसलिए इन्हें ताल वाद्य कहकर सम्बोधित किया जाता है। वादन क्रिया की दृष्टि से अवनद्ध वाद्यों को पाँच उपवर्गों में विभक्त जा सकता है। पखावज, मदंग, तबला-ढोलक इत्यादि दोनों हाथों के पंजों से या उंगलियों से बजाये जाने वाले वाद्य है।

खजरी, हुडुक, दायरा इत्यादि एक हाथ की उँगलियों से बजने वाले वाद्य है। नगाड़ा, धौंसा, ढाक इत्यादि शंकु से बजाये जाने वाले वाद्य है। बड़ा ढोल, पटह इत्यादि एक ओर हाथ से तथा एक ओर डंडी से बजाये जाने वाले वाद्य है। डमरू, ढक्का इत्यादि आते है। घुंडी की चोट से बजने वाले वाद्य है। बनावट की दृष्टि से भी अवनद्ध को कई वर्गों में विभाजित किया गया है भीतर से खोखले तथा दोनों मुखों पर मढ़े हुए वाद्य। इसमें गोपुच्छा और मदंग आते है। दोनों ओर से मुख छोटे और बीच का भाग भी उठा हुआ होता है जिन वाद्यों में खोल और मदंग आते है, दोनों मुख के समान और बीच का भाग भी समान हो जिसके अन्तर्गत पंजाबी ढोलक और महाराष्ट्रीय ढोलक सम्मिलित है। दोनों मुख समान हो किन्तु भाग बहुत छोटा होता है, जैसे- डमरू, हडुक्का आदि वाद्य आते है। दुंदुभि और भूमि दुंदुभि अवनद्ध वाद्यों का बहुत प्रचार था। दुंदुभि का वादन रणक्षेत्र में और यज्ञ आदि धार्मिक उत्सवों में होता था। महर्षि भरत जी ने मदंग तथा दुर्दर अंगभूत अर्थात् प्रमुख वाद्य और झल्लरी तथा पटह आदि वाद्य गौण माने गए है। इन सभी वाद्यों का वादन उत्सव,

www.ignited.in

मान, विवाह आदि प्रसंगों पर तथा नाटकों में प्रमुख रूप में किया जाता।

अवनद्ध वाद्यों की उत्पत्ति एवं विकास

"वाद्य संगीत की लय बद्धता का सार्थक पक्ष ही इनको विभिन्न रूपों में भले ही अलग रूप में लाए और उनका मूल उद्देश्य समान होने के कारण उनमें पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित हो जाते है, इस दृष्टि से अवनद्ध वाद्यों का ताल वाद्यों से एक गहरा रिश्ता बना जाता है।"[1] महर्षि भरत ने अपने नाट्य शास्त्र में अवनद्ध वाद्यों के अन्तर्गत प्रमुख्य रूप से वैदिक काल के पुष्कर वाद्यों का वर्णन किया हैं। मदंग हुडुक्का, पट्ह, ढक्का, डमरू, घटम, भेरी, निसान, गड्स आदि अवनद्ध वाद्यों की प्रमुखता को वर्णित करते हुए, उनकी जातियों की संख्या को प्रस्तुत किया है। इसी शृंखला में विकास की इस प्रक्रिया में आगे चलकर, जिनमें वैदिक लय की अभिव्यक्ति करने के लिए आरम्भ में वह हाथों से ताली बजाने से लेकर, भूमि में गड्डा खोदकर तथा कटे पेड़ के तने को खोखला करके शिकार द्वारा प्राप्त जानवरों की खाल को मढ़कर बजाने की प्रक्रिया तक पहुँचा, वहाँ आगे चलकर मिट्टी, काँसे, तामर इत्यादि धातुओं के पात्रों के मुख पर पशुओं की खाल मढ़कर मानव ने भिन्न-भिन्न स्थान व कलानुसार विभिन्न अवनद्ध वाद्यों का निर्माण किया।

अवनद्ध वाद्यों के सृजन और विकास की पृष्ठभूमि में समय-समय पर इनके विभिन्न प्रयोग हुए है, जो भारतीय संगीत में कहीं कहीं आज भी संगीत समारोहों के अतिरिक्त अन्य कई कार्यों के लिए बजाये जाते है जैसे कि पूर्व काल में राजा महाराजा अपने द्वारा निर्दिष्ट घोषणाओं को जनता तक पहुँचाने के लिए नगाड़ों के स्वरूप में अवनद्ध वाद्यों का सहारा लेते थे। आज भी कई आदिवासी लोग चर्ममड़ित वाद्यों को बजाकर अपनी अपनी संस्कृति और विरासत को संयोजित किए हुए है। ध्वनि का महत्त्व है और इन अवनद्ध वाद्यों की अपने एक सांस्कृतिक ऐतिहासिक विरासत है जो संगीत में विभिन्न प्रकार से अपनी एकांगिता और गतिशीलता बनाए हुए है। शायद वाद्यों के निर्माण में कदाचित विभिन्न प्राकृतिक ध्वनियाँ सबसे अधिक प्रेरक सिद्ध हुई होगी।

"इसके अतिरिक्त एक और तथ्य भी विचारणीय है, वह ये की अधिकतर वाद्य गीत और नृत्य के साधन रूप में रहकर विकसित था। नाट्य के अन्तर्गत भिन्न-भिन्न अंगों में सामंजस्य उत्पन्न करने के लिए इन वाद्यों को प्रयोग में लाया जाता था। "महर्षि भरत ने अवनद्ध वाद्यों के लिए "पुष्कर" शब्द का प्रयोग किया है।"[1] धुरवा के भिन्न-भिन्न भागों के साथ भिन्न लयों में पुष्कर का वादन किया जाता था। दुंदुभि, भेरी, मदंग, पणव, मंडुक, मुरज, नन्दिमुख, कुंभ, चेलिका, आदंबट आदि अवनद्ध वाद्यों का भी प्रचार था। हुए है।"[1]

इस प्रकार सभी ग्रन्थों में अलग-अलग नामों से अनेक प्रकार के अवनद्ध वाद्यों का वर्णन मिलता है, जिनमें से कुछ ऐसे है जो दोनों ओर चमढ़े से मढ़े रहते है। तथा कुछ ऐसे है जिनमें एक और ही चमढ़ा मढ़ा रहता है। प्राचीन, मध्य, कालीन अवनद्ध वाद्य जो संगीत शास्त्रों में उपलब्ध होते है। वे वैदिक काल में पटह, आबुज, दुर्दर, दुन्दुभि, दर्दुर, मण्डिडक्का, भूमि दुन्दुभि, मण्डिडक्का आदि अवनद्ध मध्ययुगीन वाद्यो के अन्तर्गत उपंग, ढक्का, डम्मू, खफ, खंजरी, मुखचंगा, घड़ा, निसान, डिमडिम, पखावज, तबला इत्यादि वाद्य विषेष रूप से आते है। वास्तव में इनमें से प्राचीन वाद्य दुंदुभि, मृदंग, मुरज, मदुल एवं पखावज तथा तबला ही शास्त्रीय संगीत के वाद्य स्वीकार किए जा सकते है, अन्य सभी वाद्य प्राय लोकसंगीत के अनुकूल ही दिखाई पड़ते है। मध्यकालीन-शास्त्रीय संगीत में प्रयोग होने वाले वाद्य 1) दुंदुभि 2) पटह 3) मृदंग-मुरज-मदुल एवं पखावज 4) तबला।

अधिकांश रूप से ताल गत वाद्य का अन्तर्गत अवनद्ध वाद्य आते है। प्राचीन मानव का नृत्य भाव कि तुलना में लय प्रधान अधिक था। आज भी लोक नृत्यों में देखा जा सकता है। नृत्य के साथ ताल देने के लिए और ताल मापने के लिए ही इन चतुविध वाद्यो का सर्वप्रथम सृजन हुआ होगा। "निर्माण की प्रेरणा कुछ उन ध्वनियों से प्राप्त हुई होगी, जो कि वह नृत्य करते समय अपने शरीर के भागों से हाथ से पीटकर उत्पन्न किया करता था।"[2] संगीत की प्राचीन परिभाषाओं के मतानुसार प्रारम्भिक अवस्था में गायन, वादन और नृत्य साथ-साथ चलता था।

भरत कृत नाट्यशास्त्र नृत्य पर आधारित है। जिसके अन्तर्गत संगीत की विवेचना तो बहुत कम अध्यायों में की प्रमुखता है। नृत्य में ताल पक्ष की ही प्रधानता है। इसी से पुरातन भारत में नृत्य का विस्तृत अध्याय विशेषता दक्षिणी भारत वासी नृत्य में ताल को महत्त्वपूर्ण स्थान में विस्तृत करते है। संगीत के आचार्य भरत मुनि ताल को अभिव्यक्त करने का माध्यम घन वाद्य को कहते है, किन्तु जब वाद्यों के विकास की प्रक्रिया में अवनद्ध वाद्य पर भी किया जाने लगा। अवनद्ध वाद्यों से पूर्व घन वाद्यों के लिए ताल के बोलों की आवश्यकता नहीं होती थी। अवनद्ध वाद्यों की मूल प्रक्रिया समय नाप कर बोलों के रूप को संगीत में दर्शाया जाता है।

रिदम स्वाभाविक रूप से मनुष्य के लिए आता है, क्योंकि सृष्टि में सब कुछ उसके पास चला जाता है। यह सबसे पुराना

आवेग है, आदिम मनुष्य के नृत्य का औपचारिक रूप उसकी भावनाओं से बहुत अच्छा था, दोनों कार्रवाई का अनुभव खुशी और कभी उस ईश्वर को प्रकट करते हैं जिसे वह डरता था। मूल आवेग उनके द्वारा लयबद्ध अभिव्यक्ति के विभिन्न रूपों को मानकीकृत करने के लिए और डिजाइन लयबद्ध वाद्यों के निर्माण के लिए उनका नेतृत्व किया गया।[1]

हमारा प्राचीन मार्गी संगीत अपने कुछ महत्त्वपूर्ण संस्कारों के कारण सिमट गया और आधुनिक समाज में प्रचलित मार्गी संगीत की अपेक्षा देशी संगीत के भारतीय संगीत कला के कई रूप हो गए, जिनके कारण संगीत के प्रति अलग-अलग धारणाएँ निकली। कुछ विकसित हुई, कुछ अविकसित रह गई। फिर भी अतीत से यह पता चलता है कि अवनद्ध वाद्यों के विभिन्न पक्षों का बहुत प्रचार प्रसार हुआ। अवनद्ध वाद्यों की श्रृंखला में शास्त्रीय संगीत की सीमाओं से परे उपशास्त्रीय संगीत एवं लोक संगीत का अपना अलग विधान है, जिनमें लोक संगीत में प्रयुक्त होने वाले अवनद्ध वाद्यों का एक अलग वर्ग है। लोक संगीत में ताल दर्शाने के लिए (अवनद्ध वाद्य) ढोलक का अधिक प्रयोग होता है। ढोलक पर अधिकतर कहरवा और दादरा तालों का वादन होता है। विवाह के अवसरों पर स्त्रियाँ ढोलक की थाप पर गीत गाती है। महिलाओं द्वारा हर्षोल्लास के समय इस वाद्य का प्रयोग होता है। महिला लोकगीतों के साथ अधिकतर घन व अवनद्ध वाद्यों का प्रयोग भी दृष्टिगत होता है। जिसे इण्डिया, करताल, रमझौल, घुघरू, ढोलकी, आदि का प्रमुख रूप से प्रयोग किया जाता था। आधुनिक काल में भारतीय संगीत में चित्रपट संगीत का जो प्रार्दुभाव हुआ, उसका उल्लेख अवनद्ध वाद्यों के एक विषेष पक्ष को प्रकाशित करता है।

अवनद्ध वाद्यों के निर्माण और विकास की पष्ठभूमि में समय-समय पर इनके विभिन्न प्रयोग हुए जो भारतीय संगीत में कहीं न कहीं आज भी संगीत समारोह के अतिरिक्त अन्य कई कार्यों के लिए प्रयुक्त होते है। इसीलिए इनका व्यापक अध्ययन करने के लिए अवनद्ध वाद्यों की प्राथमिकता को अलग-अलग रूपों में देखा जाता है। हमारे प्राचीन मन्दिरों में भी वर्तमान समय में नगाड़ा बजाकर एक तो मन्दिरों की समय सारणी का वर्णन है और दूसरी और इनकी ध्वनि सुनकर दूर-दूर तक लोग अवनद्ध वाद्यों की ध्वनि के माध्यम से मन्दिरों के खुलने और बंद होने का ज्ञान पाते है। "आगे चलकर उध्र्वमुखी अवनद्ध वाद्यों को कमर में बाँध कर तथा खड़े होकर बजाने की इस सुविधा के प्रति भारत के अवनद्ध वादकों का ध्यान जाना स्वाभाविक ही था। अतः इसी सुविधा से प्रेरित होकर पूर्व-परम्परा से प्रचलित ऊध्र्वमुखी द्विपुष्करों की जोड़ी के आकार को छोटा करके तथा उसे कमर में बाँध कर व खड़े होकर या चलते हुए बजाने का प्रचलन चल पड़ा। इस प्रकार यह जोड़ी वाद्य आगे अनुकूल समय पाकर नए परिवेश में 'तबला' नाम से पुनः प्रतिष्ठित होकर प्रायः सत्रहवीं अठारहवीं शताब्दी से भारतीय संगीत में एक प्रमुख अवनद्ध वाद्य के रूप में दिखाई पड़ने लगता है।"1

प्राचीन काल एवं वर्तमान समय तक प्रचलित अवनद्ध वाद्य-

दुन्दुभि का ऋग्वेद में इस प्रकार उल्लेख मिलता है कि शत्रुओं को परास्त करने के लिए दुन्दुभि का उल्लेख पाया जाता है। दुन्दुभि की गर्जना वीरों के हृदय में उत्साह का संचार करती है तथा शत्रुओं के हृदय में भय का। दुन्दुभि का घोष समस्त दिशाओं में परिव्याप्त होने की बात अथर्ववेद में उल्लेखित है, रथों की प्रतियोगिता के साथ दुन्दुभि की तुमुल ध्वनि का उल्लेख है। इस वाद्य की चर्चा ऋग्वेद के 01/28/5 मंत्र से आया है जो इस प्रकार से है।

यच्चिद्धि त्वं गृहेगृह उलूखलक युज्यसे।

इह धुमत्तमं वद जयतामिव दुन्दुभिः।।

हे उलूखल कूटन की मूसल यदि तू प्रत्येक घर में विद्यमान है तो वैदिक कर्म में उसे प्रकार प्रभूत ध्वनियुक्त शब्द कर जिस प्रकार विजयी की दुन्दुभि गर्जन करती है दुन्दुभि शब्द ध्वन्यनुकारी जान पड़ता है।[1]

अवनद्ध वाद्य की स्थिति आज भारतीय संगीत के सभी पक्षों शास्त्रीय, उपशास्त्रीय, लोक, सुगम संगीत में काफी सृढ़ एवं प्रतिष्ठित है। तबला वाद्य अपनी बनावट के कारण मृदंग की अपेक्षा वादन करने में आसान है। तथा ऊध्र्वमुखी तबला वाद्य दो भागों में ऊँचाई में भी कम होता है। अवनद्ध वाद्य तबला वाद्य का वादन दोनों भागों में उँगलियों द्वारा किया जाता है तथा पखावज के बाए भाग में उंगलियों की अपेक्षा हथेली से वादन होता है अत दाए भाग में उंगलिय तथा बाएँ भाग हथेली द्वारा वादन करने से दुरत लय कायम करने से कठिना होता है। तबले के वादन में के बोलों उसके वादन की लोकप्रियता का सहज अनुमान हो जाता है। तैयारी के साथ वादन करने तथा लयकारी दिखाने हेतु तबला वाद्य पूर्ण रूप से अपनी बनावट के कारण सक्षम है। जहाँ शास्त्रीय संगीत के सभी पक्षों धुरपद धमार, ख्याल गायकी तथा सुगम संगीत के साथ ये वाद्य सक्ष्म है वही तबले की महत्ता अवनद्ध वाद्य की श्रेणी में प्रतिष्ठित एवं लोकप्रियता लिए हुए है।

www.ignited.in

सांगीतिक सांसार में वाद्यों का महत्व अक्षुण हैं। प्रत्येक वाद्य स्वयं में विशेष गुण समाहित किये हुए हैं। तबला भी अपनी विशिष्टता के कारण राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर संगत व सोलो दोनों रूपों में अपनी सुदृढ़ तथा प्रतिष्ठित पहचान बना चुका हैं।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर संगत व सोलो दोनों रूपों में अपनी सुदृढ़ तथा प्रतिष्ठित पहचान बना चुका हैं। इस.प्रसिद्ध वाद्य.की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डाला जाये तो जो रोचक तथ्य हमारे समक्ष आते हैं वह ये हैं.कि "उत्तर भारत में साधारणतः ऐसा जनप्रवाह है कि मध्ययुग में मृदंग अर्थात् पखावज को बीच से काटकर दो हिस्सों में उध्र्वमुखी स्थिति में रखकर बजाने से तबला वाद्य की उत्पत्ति हुई। इस तरह परवावज के दो भाग करने पर भी इन्हें उध्र्वमुखी रूप से बजाया जाना सम्भव हुआ अर्थात् पखावज दो भागों में बाटकर भी नए वाद्य के रूप में बोला। अतएव 'तब भी बोला' शब्द का अपभ्रंश होकर तब भी बोलात्रतबबोला- 'तबला' की व्युत्पत्ति हुई। इस परिकल्पना के अनुसार यह हिन्दी भाषा का देशज शब्द सिद्ध होता है।"[1] प्राचीन मन्दिरों की शिल्प मूर्तियों में हमें ऐसे ताल वाद्यों के चित्र मिलते है जिनका स्वरूप आज के तबले की जोड़ी जैसा है। ये गुफाएँ लगभग 300 वर्ष से लेकर 16वीं शती के काल की है। ये मूर्तियों एवं शिल्प उस समय के जनजीवन के प्रतीक हैं।

तबला- विकास क्रम, स्वरूप, बनावट एवं वर्ण विधि

"भारतीय संगीत में तबले की उत्पत्ति और विकास की प्रक्रिया के संदर्भ में तबल शब्द का प्रचलन चैदहवीं शताब्दी के आसपास हुआ क्योंकि संगीत रत्नाकर ग्रन्थ 13वीं शताब्दी के अन्तर्गत लिखा गया जिसमें तबला शब्द का प्रयोग युद्ध अथवा उत्सव में बजाये जाने वाले उध्र्वमुखी अवनद्ध वाद्यों के लिए किया जाता था, परन्तु समय के अन्तराल के बाद दो नग के जोड़ी वाले तबला शब्द के प्रयोग में आते है। "पखावज काटा तब बोला" मुहावरे का 'तब बोला' शब्दद्वय की परिणति तबला है।

आज हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में जो स्थान तबले का है वह अन्य किसी ताल वाद्य का नहीं है। अन्य अवनद्व वाद्यों की अपेक्षा तबला भारतीय संगीत में सर्वाधिक लोकप्रिय.वाद्य है। तबले की उत्पत्ति और विकास सम्बन्धित विभिन्न धाराओं में एवं विशेषताओं में ये बात निर्विवाद सत्य है। तबले की बनावट और आकति के लिए.इसके दोनों.भागों को उध्र्वमुखी रख दिया जाए तो यह अन्य अवनद्ध वाद्यों से अलग-लगता है। तबला आधुनिक युग का सर्वाधिक, प्रतिष्ठित और प्रचलित लोक प्रिय वाद्य है। लेकिन इसके आविष्कारक और जन्म के विषय में अब भी निर्विवाद रूप को पाना विद्वानों के अलग-अलग विचार, कुछ प्राचीन मान्यताओं का संक्षिप्त रूप जिससे तबला वाद्य से सम्बन्धित कई उल्लेख प्राप्त होते है।

प्राचीन भारत में अरबी, फारसी, उर्दू की निवासी मुसलमानों के आने से भारतीय भाषाओं का समावेश हुआ। जिनको उन लोगों ने ऊध्र्वमुखी वाद्य के रूप में इस वाद्य को तबल शब्द से सम्बोधित किया गया और ये शब्द जन मानस के पटल पर छा गया। इससे पूर्व भी अरब, फारस, तुर्की इत्यादि मुसलमान देशों में भी तबल शब्द से ही संकेत दिया जाता था, परन्तु उनमें से किसी वाद्य का स्वरूप भारतीय तबले जैसा नहीं था। यह तथ्य पुनः ध्यात्व्य है कि अमीर खुसरों के लगभग 300 वर्ष के बाद भी तबला शब्द का उल्लेख युद्ध के नगाडे के अर्थ में किया जाता रहा है। जिसका संदर्भ उनके परवर्ती साहित्य

सिक्खों के श्री गुरु-ग्रन्थ-साहिब (1469 से 1538 ई॰) में और मलिक महुम्मद जायसी के पद्मावत (1521 से 1541) से प्राप्त होता है। 15वीं शताब्दी.में सिक्खों के प्रथम गुरु नानक देव जी ने अपने एक शब्द में 'तबल बाज बीचार.सबदि सुणाहया' है।

'सूफी कवि मलिक मुहम्मद जायसी ने सोलहवीं शताब्दी में पद्मावत में 'तबल' का उल्लेख निम्न चैपाइयों में किया है। यथा-

"बाजे तबल, अकूल जुझाऊ।।

चढ़ा कोपि सब राजा राऊ।।

एक अन्य स्थान पर पुनः यह शब्द आया है-

असुदल गजदल दूनौ साजै।

औ घन तबल जूझ कहै बाजै।।"[1]

उपर्युक्त आधारों पर ज्ञात होता है कि उ॰ अमीर खुसरों ने तेहरवीं शताब्दी में तबले का आविष्कार नहीं किया। अमीर खुसरों से सम्बन्धित एक और अन्य मत प्रचलित है कि 18वीं शताब्दी के अमीर खुसरो द्वितीय जो स्वयं बीन वादक थे, ने इसका आविष्कार किया। इन्हें खुसरो खाँ उपनाम से भी जाना जाता है।

शांरग्देव के बाद मध्ययुग में हुए राजनैतिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों का गहरा प्रभाव भारतीय संगीत के इतिहास पर पड़ा, जिसके फलस्वरूप उतर भारतीय तथा दक्षिण भारतीय संगीत की नींव बनी।

www.ignited.in

"दक्षिण भारत में संस्कृत भाषा विधिवत्त प्रचलित रही परन्तु मुस्लिम शासन के प्रभाव के कारण हिन्दी, फारसी, उर्दू भाषाओं का अधिक प्रभाव रहा। इसीलिए दक्षिण भारतीय संगीत पर प्राचीन भारतीय संगीत, ताल एवं वाद्यों का प्रभुत्व बना रहा। जिससे दक्षिण भारत में संस्कृत के प्रभाव से मृदंग, या मुरज ने मृदंगम् नाम ही धारण किया।"[2] कलान्तर में उत्तर भारतीय संगीत में अनेक संगीताचार्य या तो स्वयं उत्तर भारत की तरफ आ गए या उन्हें मुगलबादशाहों ने विभिन्न राज्यों को जीतने के बाद अपने साथ ले जाकर अपने दरबारों में स्थान दिया।

तबला की उत्पत्ति को लेकर तबला वाद्य के मुख्य और प्रारम्भिक प्रवत्र्तकों में सुधार खाँ का नाम आता है। राजाश्रय के कारण उनका निवास स्थान दिल्ली था, इसलिए ये दिल्ली के मूल प्रवत्र्तक हुए। "तबले की शुरुआत दिल्ली से हुई। पहले तो पखावज बजती थी। जब ख्याल गायन की शुरुआत हुई तब ऐसे वाद्य की आवष्यकता प्रतीत हुई, जो ख्याल गायन शैली के अंगरुप हो, क्योंकि पखावज की ध्वनि भारी होती है, उसकी गूँज भी अधिक होती है, यह धुरपद शैली के अनुरूप होती है परन्तु ख्याल के लिए यह ध्वनि अधिक वज़नदार होती है और पखावज की संगति अलग है और ख्याल की संगति अलग होती है तो पखावज की संगति ख्याल संगति में चल नहीं सकती इस लिए एक ऐसे वाद्य की आवष्कता हुई, ऐसी शैली की आवष्यकता हुई जो ख्याल संगति के लिए उपयुक्त हो, इस कारण वष तबले का उद्गम हुआ।"[1]

अवनद्ध वाद्यों की सूची में तबला एक विशेष वाद्य बनकर मुखरित हुआ और समय-समय पर इसमें होते हुए विकास में इसकी विशिष्टता बड़ी और संगीत के क्षेत्र में इसका विकास होता गया और इसकी वादन विधि भारत में प्रचलित विभिन्न संस्कृ तियों की परम्परा के अनुरूप अत्यधिक प्रभावशाली सिद्ध हुई। जिसका आज तक प्रचलित प्रभाव देखने को मिलता है। तबले का प्रयोग गायन, वादन और नृत्य तीनों के साथ किया जाता है।

तबला-स्वरूप एवं बनावट

"तबला उत्तर भारत का सबसे लोकप्रिय और व्यापक रूप से इस्तेमाल किया जाने वाला ड्रम है। इसमें एक दाहिने हाथ का ड्रम दयान होता है, जिसे तबला भी कहा जाता है, और बाएँ हाथ का ड्रम, ब्यान"।[3]

"सबसे अच्छी तरह से जानते हैं कि श्पॉट-लाइकश् ड्रम टेबल की तरह है, यह पूरी तरह से उत्तर भारतीय है और अब दुनिया भर में जाना जाता है।"[4]

तबला एक अवनद्ध वाद्य है। उत्तर भारत के ताल वाद्यों में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। तबले की ध्वनि में कोमलता, मधुरता, गम्भीरता, गति को चंचलता सभी कुछ प्राप्त हो जाता है। भारतीय तबला केवल भारत में ही नहीं अपितु सारे संसार में संगीत के लिए उपयोगी ऐसा वाद्य दिखाई नहीं देता इसलिए वाद्य के रूप में और वादकों के रूप में जो प्रतिष्ठा और महत्त्व तबले को प्राप्त हुआ है। वह अन्य किसी लय वाद्यों को प्राप्त नहीं है।ष्तबला उत्तर में सबसे व्यापक रूप से सबसे टक्कर उपकरण है, हालांकि पखावज सभी टक्कर वाद्य यंत्रों में सबसे प्राचीन है, यह तबला द्वारा कम या ज्यादा नहीं गाया गया है। तबला विशेष रूप से उत्तर में भारतीय संगीत का एक महत्वपूर्ण अंतिम भाग है, और। तबला की जोड़ी के बिना कोई संगीत कार्यक्रम या तो मुखर या वाद्य नहीं हो सकता है। ष्1

तबले के दो भाग है- दाहिने हाथ की ओर रखकर बजाया जाने वाला भाग दायां तबला और बाएँ हाथ की ओर रखकर बजाया जाने वाला भाग बायाँ डग्गा कहलाता है। दोनों मिलकर तबला जोड़ी कहलाती है।

दाहिना तबला

इसका मुख्य शरीर लकड़ी का बना होता है। यह बाहर से लकड़ी का बना होता है, परन्तु भीतर से खोखला होता है। दाहिने भाग के विभिन्न अंग होते है जैसें पूड़ी, चाँटी, स्याही, गजरा, बद्धी, गट्टा, लव, गुड़री, गज़रा इत्यादि।

पूड़ी – यह पूरा भाग चमड़े का होता है जो लकड़ी के मूँह के ऊपर चड़ा रहा है जो बद्धि से कसा रहता है। यह बकरे के चमढ़े की बना होता है। इसमें चमड़े की तीन परते होती है। पहली परत का चमड़ा सख्त और बाकी दो परतों का चमड़ा मुलायम होता है। तीनों परते एक साथ गजरे द्वारा बंधी रहती है। चमडे की तीनों परतों के नीचे वाली तथा उपर वाली परतों का चमड़ा बीच से काटकर निकाल दिया जाता है। नीचे वाले किनारों का चमड़ा मुख्य चमड़े को तबले के काठ की मुठेर के कोनों से काटने से बचाता है। इस तरह नीचे वाला किनारा बीच वाली परत की रक्षा करता है। नीचे वाली परत खुले मुँह को ढक लेती है और उपर वाला किनारा बोल निकालने के काम आता है।

चांटी - जो चमड़े की पट्टी पूड़ी के अन्दर की ओर गोलाकार में लगी रहती है, उसे चांटी कहते है।

स्याही - तबले के मुख पर मढ़ी हुई पूड़ी के बीचोबीच गोलाकार काला मसाला लगा रहता है, वही स्याही कहलाती

www.ignited.in

है। इसे तैयार करने के लिए लोहचूर्ण कोयला, लेई, पका हुआ चावल आदि का प्रयोग किया जाता है।

लव - चांटी और स्याही के बीच के स्थान को लव कहते है। तिं वर्ण इसमें ही बजाया जाता है।

गजरा - पूड़ी के चारों और चमड़े द्वारा बनी हुई माला की तरह गोलाकार का जो हिस्सा होता है, उसे गजरा कहते है। इसमें 16 छिद होते है, जिससे बड़ी पूड़ी को कसा जाता है।

बद्धी - यह चमड़े की बरीक पट्टी होती है जिसके द्वारा पूड़ी को कसा जाता है।

गट्टा - यह लकड़ी के गोल आकार के तीन इन्च लम्बे आठ टुकड़े होते है जो बद्धी के नीचे होते है, इन्हीं द्वारा पूड़ी के स्वर को ऊँचा या नीचा किया जाता है। ये गिनती में आठ होते है।

गुड़री - यह चमड़े का बना हुआ गोल आकार का गजरा होता है जो लकड़ी के नीचे के हिस्से में लगा रहता है। इसके बीच से होकर बद्धी निकलती है और पूड़ी को कसती है।

बायां भाग

इसका ढांचा मिट्टी, पीतल, तांबा या स्टील आदि धातु से निर्मित होतें है। मिट्टी के डग्गे में गूँज बहुत होती है, लेकिन उसके टूटने का डर रहता है। आजकल बहुत से डग्गे धातुओं से बनाए जाते है। ये दाहिने भाग तबले के समान ही होते है। परन्तु उसमें दो तरह का अन्तर होता है, एक तो उसमें गट्टे नहीं लगे रहते, दूसरे इसकी ऊँचाई तबले से कुछ कम होती है। मुख व्यास 6 या 10 ईंच का होता है। और यह चैड़ाई में तबले से अधिक गोलाकार होता है।

तबला की वर्ण विधि

भिन्न-भिन्न वाद्यों पर भिन्न-भिन्न बोल बजाए जाते है। इसी प्रकार तबले पर भी कुछ बोल बजाए जाते है, इन्हें वर्ण कहा जाता है।

दाहिने हाथ के वर्ण - ता, तिन, ती, ट, दीं

बाएं हाथ के वर्ण - गे, के

दाहिने हाथ के वर्ण -

ता या ना- तर्जनी उँगली से तबले पर मैदान और किनारी के बीच की लाईन पर आघात करने पर उत्पन्न होते है।

तिन- तर्जनी उँगली के पहले दोनों पोटों की स्याही और मैदान के बीच आघात करने से उत्पन्न होते है।

ती- मध्यमा और अनामिका दोनों ऊँगलियों को एक साथ स्याही के बीच में आघात करने पर ती की ध्वनि निकलती है।

ट या र- तर्जनी ऊँगली को सीधा स्याही के मध्य भाग में आघात करने से ट या र ध्वनि उत्पन्न होती है।

तीं- हाथ की सारी ऊँगलियों को बंद करके गजरे पर आघात करने से ती की ध्वनित होती है।

बायें हाथ के वर्ण

गे- बायें हाथ की पहली ऊँगली से स्याही अग्रभाग से दोनों ऊँगलियाँ मध्यमा और अनामिका के आघात करने से गे की ध्वनि निकलती है।

के, क, पाँचों ऊँगलियों को जोड़कर हथेली सहित लव और स्याही पर हाथ को दबाकर मारने से 'के' वर्ण निकलता है।उपयुक्त वर्णों के द्वारा ही धागे, तिरकिट, धिरधिर, किड़नग, धुमकिट तक आदि बोल तबले पर बजाए जाते है।

घराना परम्परा के संदर्भ में तबला के विविध घराने- प्रादुभु एवं परम्परागत विशेषताएं

गुरु और शिष्य के संयोग से ही 'घराना' या 'सम्प्रदाय' बनता है। "सम्प्रदाय शब्द संस्कृत भाषा के सम् और प्रदाय दो शब्दों से मिलकर बना है।"[1] संगीतज्ञों की सृजनात्मक अभिव्यक्ति द्वारा ही किसी एक शैली, पद्धति, परम्परा या घरानें का विकास हुआ।

"हर आने वाला कलाकार हमेशा परंपराओं द्वारा सौंपे गए कुछ हिरन के कामों को अपनाता है, जिसके लिए वह खुद को जोड़ लेता है। यदि वह अपने खुद के स्कूल का अनुसरण करता है, तो वह नई शैली का अग्रणी बन जाता है।"[2]

घराना एक ऐसी सांगीतिक वंश-परम्परा है जिसके माध्यम से न केवल उस परम्परा की संगीत-शैलियों, बन्दिशें और सिद्धान्त ही मौखिक रूप से गुरु शिष्य परम्परा के रूप में अगली पीढ़ी को प्राप्त होते थे, अपितु तत्कालीन संस्कृति भी इसी माध्यम से संचालित हो जाती थी। "घराने के मुख्य नियम, ध्येय, आचरण और रीतिरिवाज, उसके समय की राजकीय एवं सामाजिक परिस्थिति तथा मूल प्रवत्र्तक की अपनी वृत्ति, संस्कार और संस्कृति पर आधारित होते है। यही कारण है कि घराने के मूल प्रवत्र्तक की छाप उसके सभी

www.ignited.in

पीढ़ी दर पीढ़ी कलाकारों की कला में स्पष्ट दिखाई देती है।"[3]

1. "घराना पहले सीखने का महत्वपूर्ण केंद्र था। परंपराओं को मूल संस्थापकों और उनके शिष्यों के वंशजों द्वारा पारित किया गया था। आमतौर पर यह उम्मीद की जाती थी, कि सबसे बड़े बेटे को सबसे ज्यादा पढ़ाने की शिक्षा दी जानी थी। लेकिन परिवार की परंपराएं उन शिष्यों को भी सौंपी गईं जिन्होंने विशेष प्रतिभा का प्रदर्शन किया क्योंकि इससे घराने को अपनी प्रतिष्ठा को मजबूत करने और विस्तार करने में मदद मिली। परिवार में विवाह को प्रोत्साहित किया गया, खासकर जब परंपरा के साथ आगे बढ़ने के लिए कोई बेटा उपलब्ध नहीं था।"

2. घरानों की उत्पत्ति की पृष्ठभूमि में कई कारण हमारे समक्ष आतें हैं, जैसे कि राजनैतिक परिवेष से सम्बन्धित संकीर्ण सोच व मुसलमानों का भारत में प्रवेश, स्वर प्रधान गायकी की महत्वता, कंठ ध्वनि दोष तथा सीमाएँ आदि घरानों के अस्तित्व में आने की वजह बनी, जिसका विस्तृत वर्णन इस प्रकार हैं - संकीर्ण मनोवृत्ति किसी भी नई वस्तु या विद्या की प्राप्ति के मार्ग में बाधक होती हैं। शिष्य अपने गुरु से मौखिक शिक्षा प्राप्त करता था तथा अन्य किसी से कोई सांगीतिक शिक्षा प्राप्त करना उसके लिए निषिद्ध था, यह उसकी तंग सोच का परिचायक कहा जा सकता हैं। अतः अशिक्षित कलाकारों की ऐसी मानसिकता ही घरानों के जन्म का कारण बनी, जिसके फलस्वरूप संगीत कला ने विकसित होने के अवसर को खो दिया।

3. संगीतकार राजदरबारों के आश्रय में रहते थे। वही पर उन्होंने उन्नति की प्राप्ति की किन्तु अपनी संगीतकला का अपनी जाति व अन्य जाति वालों से छिपाकर रखना तथा शिक्षा का आभाव होना भी घरानों की नीवं पड़ने में सहायक रहा।

4. भारत में जब मुसलमान आये तो दरबारों संगीतज्ञों में दो प्रकार के सांगीतिक वर्गों का भी आगमन हुआ। जो कि संगीतजीवी और संगीत उपासक के नाम से प्रसिद्ध हुए। संगीतजीवी के द्वारा भिन्न-भिन्न ग्रंथो में विकसित संगीत की गायन शैलियों की विविधता के फलस्वरूप अनेक घरानों ने जन्म लिया।

अध्ययन का उद्देश्य

1. हिन्दुस्तानी संगीत में अवनद् वाद्य का महत्व विशेष संदर्भ-तबला का अध्ययन

2. अवनद्ध वाद्यों की उत्पत्ति एवं विकास का अध्ययन

निष्कर्ष

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में तबला वाद्य का अप्रतिम स्थान रहा है। भारतीय संगीत की वाद्य परम्परा का सम्यक वर्गीकरण किया गया है। अवनद्ध वाद्यों की सूची में तबला विषिष्ट वाद्य के रूप में मुखरित हुआ है। पश्चिमी और पूरब तबले के दो बाज है, जिसमें दिल्ली और अजराड़ा पश्चिम के अन्तर्गत लखनऊ, फर्रुखाबाद और बनारस पूरब में अन्तर्गत विभाजित है। तबला के छः घरानों का परिचय देते हुए सभी घरानों की वादन शैली की प्रमुख विषेषतओं का रूपांकन किया गया है।

संदर्भ

1. भरत ने संगीत वाद्ययंत्र को "अंत्योदय वाद" के रूप में संदर्भित किया है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण में चार प्रकारों - टाटा, अवध्दा, घाना और सुशीरा का वर्णन करते हैं। बाद में, जं विट्टा शब्द का प्रयोग कुछ लेखकों द्वारा अवनाध के स्थान पर किया जाने लगा।

2. संगीता दामोदर के अनुसार, टाटा वैद्य भगवान के पसंदीदा हैं, गंधर्वों के पसंदीदा सुशीरा वैद्य हैं, जबकि रक्षस के अवध्दा वदास, जबकि घाना वाडस किन्नरों द्वारा खेले जाते हैं।

3. भरत, सारंगदेवा (Ch. AVI) और अन्य लोगों ने चार प्रमुखों के तहत संगीत वाद्ययंत्रों को वर्गीकृत किया हैरू जैसा कि डॉ। श्रृंगी और डॉ। प्रेम लता शर्मा ने बताया है, सारंगदेव का एक ही (अलग) अध्याय में सभी विधाओं का उपचार एक अलग है। भरत की इस योजना से हटकर जहां टाटा और सुशीरा को स्वरा से संबंधित अध्यायों के साथ लिया गया और अन्य लोगों के साथ अलग से व्यवहार किया गया।

4. संगीता रत्नाकर वाद्ययंत्रों के कार्य के आधार पर एक और वर्गीकरण देती हैं: सुषम (एकल वादन),

www.ignited.in

गीतागुणम (स्वर संगीत के लिए संगत), नृत्तनुगम (नृत्य के लिए संगत) और द्वायनुगम (नृत्य और स्वर संगीत दोनों की संगत)।

5. मानसोलासा (बारहवीं शताब्दी) में सोमेश्वरा का कहना है कि वाद्ययंत्र नृत्य और संगीत की सुंदरता को बढ़ाते हैं, और इसी कारण से, उनका नृत्य और संगीत दोनों में पूर्व स्थान है।

6. अबू राजा के, घुनियत-उल-मुन्या (1374 A-D-) में, हमें अवंतधा के स्थान पर विट्टा शब्द का उपयोग मिलता है।

7. लालमणि मिश्रा के अनुसार, मध्यकाल में विट्टा लोकप्रिय हो गया। बाद में, इसने क्लासिक शब्द अवनद्ध के लिए रास्ता दिया। लेकिन, पितृरत्नकोश में महाराणा कुंभा (1433-68 A-D-) पहले के वर्गीकरण का अनुसरण करते हैं। 55

8. संगीता दामोदर (पंद्रहवीं शताब्दी) ने वाद्ययंत्रों को टाटा, सुशीरा, अवनाध और घाना के रूप में वर्गीकृत किया है, जो दर्शाता है कि संस्कृत में संगीत ग्रंथों के लेखकों ने वितटा के बजाय अवनाध शब्द का उपयोग जारी रखा। काम बताता है कि जिन उपकरणों में तारों या तारों का इस्तेमाल किया गया था, वे टाटा वैद्य हैं, बांस से बने वाद्य यंत्र हैं, सुशीरा वैद्य हैं, चमड़े से आच्छादित वाद्य यंत्र हैं अवानाधा वैद्य और जो झांझ से मिलते-जुलते हैं, ताल में संगीतमय ध्वनि उत्पन्न करते हैं, घाना वायादास हैं।

Corresponding Author

Dr. Prakash Kumar Mishra*

+2 Music Teacher, Higher Secondary School, Binda, Muzaffarpur